

इंडियन माइका एंड माइकेनाइट इंडस्ट्रीज लिमिटेड

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

2 अप्रैल, 1971

[एस. एम. सीकरी, मुख्य न्यायाधीश, जी. के. मित्र, के. एस. हेगड़े, ए. एन. गोवर

और पी. जगनमोहन रेड्डी, न्यायमूर्तिगण]

बिहार और उड़ीसा उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1915, धारा 90 और उसके तहत बनाए गए नियम, नियम 111 - शराब के कब्जे के लिए अनुज्ञप्ति शुल्क का अधिरोपण - क्या शुल्क राज्य द्वारा प्रदान की गई सेवा के अनुरूप है - अनुज्ञप्ति शुल्क के भुगतान पर अभियोजन से मुक्ति - क्या यह 'क्विड प्रो को' (तत्प्रति) है ।

अपीलकर्ता माइकेनाइट के निर्माण में विकृत स्पिरिट का उपयोग कर रहा था। उसने बिहार एवं उड़ीसा उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1915 की धारा 90 के अंतर्गत बनाए गए नियम 111 की वैधता को चुनौती दी, जिसके द्वारा विकृत स्पिरिट के अधिपत्य हेतु अनुज्ञप्ति पर शुल्क लगाया गया था। उच्च न्यायालय ने इस अधिरोपण को सरकार द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिए शुल्क के रूप में वैध ठहराया।

इस न्यायालय में अपील करते हुए,

अभिनिर्धारित किया गया: (1) विकृत स्पिरिट मादक शराब होने के कारण (हालांकि मानव उपभोग के लिए अनुपयुक्त), राज्य विधानमंडल के पास शुल्क लगाने की शक्ति है। किन्तु, किसी अधिरोपण को शुल्क के रूप में वैध ठहराने से पूर्व यह प्रदर्शित किया जाना आवश्यक है कि वह अधिरोपण सरकार द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के प्रतिफल के रूप में है। यद्यपि गणितीय सटीकता की अपेक्षा नहीं की जाती, तथापि सामान्य प्रकृति का एक संबंध स्थापित किया जाना आवश्यक है। [32] डी-एफ]

वर्तमान मामले में, केवल यह सेवा प्रदान की गई थी कि उत्पाद शुल्क विभाग द्वारा एक विस्तृत कर्मचारी व्यवस्था बनाए रखी गई थी, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि निर्माणकर्ता द्वारा विकृतिकरण विधिवत किया जा रहा है तथा यह भी सुनिश्चित किया जा सके कि विकृत स्पिरिट के पश्चातवर्ती अधिपत्य का दुरुपयोग न हो, अर्थात् उसे मानव उपभोग के उपयुक्त शराब में परिवर्तित करके नहीं किया गया था। [326 एच; 327 ए - बी]

(क) जहाँ तक विनिर्माण प्रक्रिया का संबंध है, अपीलकर्ता का इससे कोई लेना-देना नहीं था। यह केवल विकृत स्पिरिट का खरीदार था और इसलिए निर्माण प्रक्रिया के पर्यवेक्षण की लागत या निर्माताओं को प्रदान की गई किसी भी तरह की सहायता की वसूली अपीलकर्ता जैसे अभियुक्तों से नहीं की जा सकती थी। इसके अलावा, नियम 9 के अंतर्गत विनिर्माण प्रक्रिया के पर्यवेक्षण की वास्तविक लागत निर्माता द्वारा वहन की जानी आवश्यक थी और उस कार्य में दोगुना शुल्क नहीं लगाया जा सकता था। [327 बी-सी]

(ख) यह मानते हुए कि विभिन्न व्यक्तियों के पास मौजूद विकृत स्पिरिट को पीने योग्य शराब में परिवर्तित किए जाने के जोखिम के कारण उस पर कड़ी और प्रभावी निगरानी की आवश्यकता थी, इसके दुरुपयोग के विरुद्ध प्रावधान करने में राज्य उपभोक्ता को कोई सेवा प्रदान नहीं कर रहा था। [327 डी]

(ग) अपीलकर्ता ने यह आरोप लगाया था कि राज्य बिना किसी सेवा प्रदान किए ही राशि वसूल रहा है। प्रदान की गई सेवाओं और लगाए गए शुल्क के बीच संबंध मूलतः तथ्य का प्रश्न है। प्रथम दृष्टया, वर्तमान मामले में अधिरोपण अत्यधिक प्रतीत होता है, भले ही यह माना जाए कि राज्य अनुज्ञप्तिधारकों को कुछ सेवा प्रदान कर रहा था। राज्य के पास ऐसा आलेख उपलब्ध था जिससे अधिरोपण और प्रदान की गई सेवाओं के बीच संबंध को कम से कम सामान्य रूप से स्थापित किया जा सकता था, किन्तु राज्य ने न्यायालय के समक्ष कोई आलेख प्रस्तुत नहीं की। अतः आक्षेपित नियम के अंतर्गत लगाया गया अधिरोपण उचित ठहराया नहीं जा सकता। [327 ई-जी]

आयुक्त, हिन्दू धार्मिक अनुदान, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीयार, श्री शिरूर मठ, [1954] एस.सी.आर. 1005; महंत श्री जगन्नाथ रामानुज दास एवं अन्य बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य, [1954] एस.सी.आर. 1046; रतिलाल पंचानन्द गांधी बनाम बम्बई राज्य एवं अन्य, [1954] एस.सी.आर. 1055; हिंगिर रामपुर कोल कम्पनी लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य, [1961] 2 एस.सी.आर. 537; एच. एच. सुदहुन्द्र तीर्थ स्वामीयार बनाम आयुक्त, हिन्दू धार्मिक एवं परोपकारी अनुदान, मैसूर, [1963] परिशिष्ट 2 एस.सी.आर. 302; कलकत्ता निगम एवं अन्य बनाम लिबर्टी सिनेमा, [1965] 2 एस.सी.आर. 477; तथा दिल्ली क्लॉथ एंड जनरल मिल्स कम्पनी लिमिटेड बनाम मुख्य आयुक्त, दिल्ली, [1970] 2 एस.सी.आर. 348—का अनुसरण किया गया।

(2) उच्च न्यायालय ने यह मानकर त्रुटि की कि जब निर्माता विनिर्माण प्रयोजनों के लिए अपने अधिपत्य में विकृत स्पिरिट की बड़ी मात्रा रखना चाहते थे, तब वे एक विशेषाधिकार एवं अभियोजन से प्रतिरक्षा प्राप्त करना चाहते थे, और इस उद्देश्य से अपेक्षित अनुज्ञप्ति शुल्क का भुगतान किया जाता था तथा वही *तत्प्रति* के रूप में कार्य करता था। [325 सी-डी]

(क) अनुज्ञप्ति देना आम तौर पर किसी को भी कोई विशेषाधिकार या लाभ प्रदान नहीं करता है, सिवाय उन मामलों के जहां किसी को सरकारी संपत्ति का दोहन करने के लिए परमिट या अनुज्ञप्ति दिया जाता है। अनुज्ञप्ति लेने की आवश्यकता किसी व्यापार, व्यवसाय या पेशे को विनियमित करके सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए निर्धारित की गई है न कि राजस्व के स्रोत के रूप में। [325 एफ-जी]

(ख) जिसे दंडनीय बनाया गया है वह या तो अनुज्ञप्ति लेने में किसी व्यक्ति की विफलता है या अनुज्ञप्ति की शर्तों का उल्लंघन है, और सरकार किसी अपराधी पर विचारण के लिए मुकदमा चलाने के अपने कर्तव्य को नहीं बदल सकती है। कोई भी शुल्क केवल प्रदान की गई सेवाओं के लिए लगाया जा सकता है। [325 ई-एफ]

[चूँकि राज्य को काफी वित्तीय नुकसान हो सकता है, इसलिए मामले को उच्च न्यायालय को भेज दिया गया और राज्य को आवश्यक आलेख प्रस्तुत करने और सहसंबंध दिखाने का और अवसर दिया गया।] [328 ए]

दीवानी अपीलीय न्यायनिर्णय: 1967 की दीवानी अपील सं. 770

दिनांक 14 सितंबर 1966 को पटना उच्च न्यायालय द्वारा 1965 की दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 887 में पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलकर्ता के लिए: *सरजू प्रसाद, के. के. सिन्हा और बी. बी. सिन्हा।*

उत्तरदाताओं के लिए: *एस. सी. अग्रवाल, आर. के. गर्ग, वी. जे. फ्रांसिस, नारायण नेटर और एस. पी. सिंह।*

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

हेगड़े, न्यायमूर्ति - इस प्रमाण-पत्र के आधार पर दायर अपील में, बिहार एवं उड़ीसा उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1915 की धारा 90 के अंतर्गत बनाए गए नियम 111 की वैधता विवाद का विषय है। अपीलकर्ता, इंडियन माइका एंड माइकनाइट इंडस्ट्रीज का तर्क है कि उक्त नियम संविधान के अधिकार क्षेत्र से बाहर है। पटना उच्च न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया।

उच्च न्यायालय में विभिन्न दलीलें विचार के लिए आईं। उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर

पहुँचा कि आक्षेपित नियम के अंतर्गत लगाया गया अधिरोपण एक शुल्क है। इस निष्कर्ष को हमारे समक्ष किसी भी पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गई। अतः अब हमें केवल यह देखना है कि लगाया गया शुल्क अनुमेय सीमा के भीतर है या नहीं। अन्य शब्दों में, यह परीक्षण करना है कि संबंधित अधिरोपण के लिए पर्याप्त *तत्प्रति* विद्यमान है या नहीं।”

अपीलकर्ता विकृत स्पिरिट का उपभोक्ता है। यह माइकेनाइट को बनाने के उद्देश्य के लिए थोक विक्रेताओं या निर्माताओं से विकृत स्पिरिट खरीदता है। बिहार और उड़ीसा उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1915 (1915 का बिहार और उड़ीसा अधिनियम 2) 19 जनवरी, 1916 को लागू हुआ। उस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसरण में - राजस्व बोर्ड द्वारा अनुज्ञप्ति शुल्क लगाने के लिए आक्षेपित नियम बनाया गया था। 1919 में विकृत स्पिरिट के अधिपत्य हेतु अनुज्ञप्ति का शुल्क केवल 2 रुपये प्रति वर्ष था, चाहे किसी व्यक्ति के पास कितनी भी मात्रा में स्पिरिट क्यों न हो। यह दर 1937 तक लागू रही। इस चरण पर यह स्मरणीय है कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 143 की उपधारा (2) के अंतर्गत प्रांतों को यह अधिकार दिया गया था कि वे उन करों, शुल्कों, उपकरों या फीसों को जारी रख सकते हैं, जो उस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व विधिसम्मत रूप से लगाए जा रहे थे। 1935 के अधिनियम के अंतर्गत, और वर्तमान संविधान के अधीन भी, मानव उपभोग के योग्य मादक द्रव्यों पर शुल्क लगाने की शक्ति प्रांतीय विधानमंडल को दी गई थी, जबकि मानव उपभोग के अयोग्य मादक द्रव्यों पर शुल्क लगाने की शक्ति केंद्रीय विधानमंडल को प्रदान की गई थी। विकृत स्पिरिट, यद्यपि एक मादक द्रव्य है, किन्तु मानव उपभोग के योग्य नहीं है। अतः उस पर शुल्क लगाने की शक्ति केंद्रीय विधानमंडल को प्रदान की गई थी और है। किन्तु, चूँकि वह एक मादक द्रव्य है, इसलिए 1935 के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय विधानमंडल तथा वर्तमान में राज्य विधानमंडल को उस पर शुल्क लगाने का अधिकार है। किसी भी विधानमंडल की शुल्क लगाने की शक्ति इस शर्त पर निर्भर करती है कि वह सामान्यतः प्रदान की गई सेवाओं के *तत्प्रति* के रूप में हो। यदि कोई अधिरोपण, जो शुल्क के रूप में प्रस्तुत किया गया हो, बिना किसी सेवा प्रदान किए लगाया गया हो, अथवा वह प्रदान की गई सेवाओं की तुलना में अत्यधिक असंगत हो, तो ऐसा अधिरोपण अवैध हो जाता है।

शुल्क और अधिरोपण के बीच का भेद इस न्यायालय के समक्ष पहली बार विचारार्थ आयुक्त, हिन्दू धार्मिक अनुदान, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीयार, श्री शिरूर मठ के

प्रकरण में आया। उस प्रकरण में न्यायालय ने, न्यायमूर्ति मुखर्जी द्वारा (जैसा कि वे उस समय थे) ऑस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश *लैथम* द्वारा *मैथ्यूज बनाम चिकोरी मार्केटिंग बोर्ड* ² के मामले में दिए गए 'कर' की परिभाषा को अनुमोदन सहित उद्धृत किया। उस मामले में माननीय मुख्य न्यायाधीश ने कहा:

" 'कर' सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा कानून द्वारा लागू किए जाने वाले सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए धन का अनिवार्य निष्पादन है और प्रदान की गई सेवाओं के लिए भुगतान नहीं है। "

“'कर' और 'शुल्क' के बीच भेद के संबंध में न्यायमूर्ति मुखर्जी ने उपर्युक्त मामले में इस प्रकार अभिव्यक्ति की:

" यह कहा जाता है कि कराधान का मूल तत्त्व बाध्यता है, अर्थात् इसे वैधानिक शक्ति के अंतर्गत करदाता की सहमति के बिना लगाया जाता है और इसका भुगतान विधि द्वारा प्रवर्तित कराया जाता है। कर की दूसरी विशेषता यह है कि यह सार्वजनिक उद्देश्य के लिए लगाया गया अधिरोपण होता है, जिसका करदाता को दिए जाने वाले किसी विशेष लाभ से कोई संबंध नहीं होता। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जाता है कि कर का अधिरोपण सामान्य राजस्व के उद्देश्यों के लिए होता है, जो एकत्रित होकर राज्य के सार्वजनिक राजस्व का हिस्सा होता है। चूँकि कर का उद्देश्य किसी विशेष व्यक्ति को कोई विशेष लाभ प्रदान करना नहीं है, इसलिए करदाता और लोक प्राधिकरण के बीच *तत्प्रति* का कोई तत्त्व नहीं होता। कराधान की एक अन्य विशेषता यह है कि यह सामान्य भार का एक भाग होने के कारण, करदाता पर लगाया गया परिमाण सामान्यतः उसकी भुगतान करने की क्षमता पर निर्भर करता है।

.....

अब शुल्क पर आते हुए, एक "शुल्क" को आम तौर पर किसी सरकारी एजेंसी द्वारा व्यक्तियों को दी जाने वाली विशेष सेवा के लिए शुल्क के रूप में परिभाषित किया जाता है। शुल्क की राशि सेवा प्रदान करने में सरकार द्वारा किए गए खर्चों पर आधारित मानी जाती है, हालांकि कई मामलों में लागतों का मनमाने ढंग से आकलन किया जाता है। आम तौर पर, शुल्क एक समान होते हैं और भुगतान करने के लिए विभिन्न प्राप्तकर्ताओं की अलग-अलग क्षमताओं को ध्यान में नहीं रखा जाता है। ये निस्संदेह कुछ

सामान्य विशेषताएं हैं, लेकिन चूंकि विभिन्न प्रकार के शुल्क हो सकते हैं, इसलिए ऐसी परिभाषा तैयार करना संभव नहीं है जो सभी मामलों पर लागू हो।

.....

यदि, जैसा कि हम मानते हैं, किसी शुल्क को प्रदान की गई सेवाओं के लिए एक प्रकार की वापसी या विचार के रूप में माना जाता है, तो यह बिल्कुल आवश्यक है कि शुल्क का उद्ग्रहण कानूनी प्रावधान के बावजूद, सेवाओं को प्रदान करने में सरकार द्वारा किए गए खर्चों से सहसंबद्ध होना चाहिए।

इसी दृष्टिकोण को इस न्यायालय ने महंत *श्री जगन्नाथ रामानुज दास एवं अन्य बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य*³ तथा *रतिलाल पंचानंद गांधी बनाम बम्बई राज्य एवं अन्य*⁴ के मामलों में पुनः दोहराया।”

“शुल्क” की प्रकृति इस न्यायालय के समक्ष *द हिंगिर रामपुर कोल कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य*⁵ मामलों में फिर से विचार के लिए सामने आई। उक्त मामलों में इस न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त किया कि यद्यपि कर और शुल्क के बीच कोई सामान्य भेद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि दोनों ही लोक प्राधिकरणों द्वारा धन का अनिवार्य अधिरोपण होते हैं, तथापि इनके बीच यह भेद है कि जहाँ कर सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए लगाया जाता है और उसके समर्थन में किसी *तत्प्रति* की आवश्यकता नहीं होती, वहीं शुल्क मूलतः प्रदान की गई सेवाओं के लिए लगाया जाता है और उसके भुगतान करने वाले व्यक्ति तथा उसे लगाने वाले लोक प्राधिकरण के बीच प्रतिफल का तत्त्व होना आवश्यक है। जहाँ कर सदैव समेकित निधि में चला जाता है, वहीं शुल्क को निर्दिष्ट सेवाओं के लिए निर्मित एक पृथक निधि में नियत किया जाता है। कोई उपकर किस श्रेणी में आएगा, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। यदि विधायिका शुल्क के नाम पर कर अधिरोपित करती है, तो उस अधिरोपण की योजना का परीक्षण कर उसका वास्तविक स्वरूप निर्धारित करना न्यायालय का दायित्व है। इस भेद को संविधान द्वारा भी मान्यता दी गई है, जो उपयुक्त विधायिकाओं को तीनों सूचियों की प्रविष्टियों के अंतर्गत कर लगाने की शक्ति प्रदान करते हुए, उन्हीं विषयों के संबंध में शुल्क लगाने की शक्ति का भी उल्लेख करता है, न्यायालय शुल्क को छोड़कर। इस न्यायालय द्वारा आक्षेपित अधिरोपण के स्वरूप का निर्धारण करने के लिए मानदंड स्थापित किए गए हैं। यह

3 [1954] एससीआर 1046

4 [1954] एस. सी. आर. 1055

5 [1961] 2 एस सी आर 537

निर्धारित करते समय कि कोई अधिरोपण शुल्क है या नहीं, वास्तविक परीक्षण यह होना चाहिए कि उसका मुख्य और आवश्यक उद्देश्य किसी विशिष्ट क्षेत्र या वर्ग को विशिष्ट सेवाएँ प्रदान करना है, और यह अप्रासंगिक है कि उससे अंततः और परोक्ष रूप से राज्य को भी लाभ हो सकता है।

*एच. एच. सुदहुन्द्र तीर्थ स्वामीयार बनाम हिन्दू धार्मिक एवं परोपकारी अनुदान आयुक्त, मैसूर*⁶ के प्रकरण में इस न्यायालय को यह विचार करना पड़ा कि उस मामले में आक्षेपित अधिरोपण को क्या शुल्क के रूप में उचित ठहराया जा सकता है। न्यायालय ने उस अधिरोपण को वैध ठहराया, जो मद्रास धार्मिक अनुदान अधिनियम, 1951 की संशोधित धारा 76(1) के अंतर्गत वार्षिक अंशदान के रूप में लगाया गया था, इस आधार पर कि ऐसे अंशदान एक पृथक् निधि में जमा होते थे, न कि राज्य की समेकित निधि में, और उन्हें प्रदान की गई सेवाओं के व्यय की पूर्ति के लिए नियत किया गया था। इसके अतिरिक्त, वे राशि सरकार को देय नहीं थीं, बल्कि आयुक्त को देय थीं, और उन्हें कर के रूप में नहीं बल्कि केवल शुल्क के रूप में अधिरोपित किया गया था। इस प्रकरण में न्यायालय ने आगे यह भी कहा कि कोई शुल्क केवल इस कारण से अपना स्वरूप नहीं खो देता कि उसमें बाध्यता का तत्व विद्यमान है, और न ही यह आवश्यक शर्त है कि शुल्क का वास्तविक रूप से प्रदान की गई सेवा से प्रत्यक्ष संबंध होना ही चाहिए। समानता का अभाव भी ऐसा एकमात्र मानदंड नहीं है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि अधिरोपण कर के स्वरूप का है।

*कलकत्ता निगम एवं अन्य बनाम लिबर्टी सिनेमा*⁷ के प्रकरण में, कलकत्ता नगरपालिका अधिनियम, 1951 की धारा 548(2) के अंतर्गत किए गए अधिरोपण की वैधता विचारार्थ आई। उस प्रकरण में इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि संबंधित अधिरोपण 'शुल्क' नहीं है और न ही 'सेवाओं के प्रतिफल' के रूप में है, क्योंकि अधिनियम किसी विशेष प्रकार की सेवाओं के प्रदान किए जाने का प्रावधान नहीं करता, जिससे उस व्यक्ति को लाभ प्राप्त हो जिस पर यह अधिरोपित किया गया है। धारा 527(43) के अंतर्गत, अन्य बातों के साथ, सिनेमा गृहों के निरीक्षण, पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण के लिए उपविधियाँ बनाई जा सकती हैं; किन्तु ऐसी उपविधियाँ बनाना अनिवार्य नहीं है, अतः संभव है कि कोई सेवा प्रदान ही न की जाए। यहाँ तक कि बनाई गई उपविधि भी केवल निरीक्षण का प्रावधान करती है, और अपीलकर्ता द्वारा किया गया निरीक्षण कार्य केवल यह देखने के लिए था कि अनुज्ञप्तिधारी द्वारा अनुज्ञप्ति की शर्तों का पालन किया जा रहा है या नहीं। यह उसके लिए कोई सेवा नहीं थी, और इसलिए अधिरोपण की

6 [1963] सप्लीमेंट 2 एस. सी. आर. 302

7 [1965] 2 एस सी आर 477

राशि को किसी सेवा की लागत से जोड़ने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। अतः यह अधिरोपण शुल्क नहीं है, बल्कि कर है।

*दिल्ली क्लॉथ एंड जनरल मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम मुख्य आयुक्त, दिल्ली एवं अन्य*⁸

के प्रकरण में किसी अधिरोपण की शुल्क के रूप में वैधता इस न्यायालय के विचारार्थ आई। उस प्रकरण में न्यायमूर्ति गोवर ने, न्यायालय की ओर से बोलते हुए, यह प्रतिपादित किया कि प्रत्येक मामले में जब यह प्रश्न उठता है कि अधिरोपण शुल्क के स्वरूप का है या नहीं, तब विधिक प्रावधानों की समग्र योजना, निरीक्षण कर्मचारियों पर लगाए गए कर्तव्य एवं दायित्व, तथा उनके द्वारा किए गए कार्य के स्वरूप का परीक्षण करना आवश्यक होगा, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि ऐसी सेवाएँ प्रदान की गई हैं या नहीं, जो अधिरोपण को शुल्क का स्वरूप प्रदान करें। कारखाना अधिनियम, 1948 के विभिन्न प्रावधानों और बनाए गए नियमों की जांच करने के बाद यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अधिनियम के बड़ी संख्या में प्रावधान, विशेष रूप से सुरक्षा से संबंधित अध्यायों में, बहुत सारे तकनीकी प्रावधान शामिल हैं। जानकारी और अपने कर्तव्यों और दायित्वों के निर्वहन के दौरान निरीक्षकों से उचित सलाह और मार्गदर्शन देने की अपेक्षा की जाती है ताकि अधिनियम के प्रावधानों का उचित अनुपालन हो सके। कुछ अवसरों पर कारखाने के मालिकों को खतरनाक मशीनों के काम करने या ऐसे उपकरणों के उपयोग के परिणामों से बचने के लिए काफी लाभ प्राप्त करना पड़ता है। जिन प्रक्रियाओं में मशीनरी की दोषपूर्ण प्रकृति के बारे में उचित समय पर चेतावनी देकर या अधिनियम के तहत निर्धारित सावधानियां बरतकर मानव जीवन के लिए खतरा शामिल है। इसी तरह यदि कोई इमारत या मशीनरी या संयंत्र ऐसी स्थिति में है कि वह मानव जीवन या सुरक्षा के लिए खतरनाक है तो निरीक्षक प्रबंधक को समय पर सूचना देकर कारखाने के मालिक को निर्माण या मशीनरी की समय पर उचित मरम्मत नहीं होने के सभी परिणामों से बचाता है। उस मामले में उच्च न्यायालय ने पाया कि अनुज्ञप्ति शुल्क की जो राशि वसूल की जा रही थी, उसका 60 प्रतिशत वास्तव में कारखाने के मालिकों को दी जाने वाली सेवाओं पर खर्च किया गया था। उस निष्कर्ष को इस न्यायालय ने स्वीकार कर लिया और उस निष्कर्ष के आधार पर इस न्यायालय ने अधिरोपण की वैधता को बरकरार रखा।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि किसी भी अधिरोपण को शुल्क के रूप में बरकरार रखने से पहले, यह दिखाया जाना चाहिए कि अधिरोपण का सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के साथ उचित संबंध है। अन्य शब्दों में, अधिरोपण को यह सिद्ध करना आवश्यक है कि वह

प्रदान की गई सेवाओं के *तत्प्रति* के रूप में है। किन्तु ऐसे मामलों में सटीक समानुपात स्थापित करना संभव नहीं होता। अपेक्षित संबंध सामान्य प्रकृति का होता है, न कि गणितीय सटीकता वाला।

आइए अब हम इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि क्या आक्षेपित नियम के तहत लगाए शुल्क को इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आधार पर शुल्क के रूप में उचित ठहराया जा सकता है।

लेकिन ऐसा करने से पहले, उन आधारों में से एक का निपटारा करना आवश्यक है जिन पर उच्च न्यायालय ने अधिरोपण को बरकरार रखा था। उच्च न्यायालय के फैसले के कंडिका 8 में यह कहा गया है:

“ जब कोई निर्माता निर्माण के उद्देश्यों के लिए अपनी स्थिति में बड़ी मात्रा में विकृत स्पिरिट रखना चाहता है, तो वह अभियोजन से विशेष विशेषाधिकार या प्रतिरक्षा की रियायत चाहता है। उस उद्देश्य के लिए उसे आवश्यक शुल्क के भुगतान पर अनुज्ञप्ति या पास प्राप्त करना होता है। अतः इसमें *तत्प्रति* का तत्त्व विद्यमान है और अभियोजन से प्रतिरक्षा एक विशेष लाभ अथवा विशेषाधिकार के स्वरूप की है।”

इस अवलोकन का निहितार्थ कुछ हद तक आश्चर्यजनक है। इन टिप्पणियों से संकेत मिलता है कि सरकार किसी अपराधी पर विचार के लिए मुकदमा चलाने के अपने कर्तव्य को बदल सकती है। अनुज्ञप्ति लेने की आवश्यकता सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए निर्धारित की गई है न कि राजस्व एकत्र करने के स्रोत के रूप में। जिसे दंडनीय बनाया गया है वह या तो आवश्यक अनुज्ञप्ति लेने में किसी व्यक्ति की विफलता है या अनुज्ञप्ति की शर्तों का उल्लंघन है; अन्यथा अनुज्ञप्ति लेने की आवश्यकता वाले नियम के पीछे कोई मंजूरी नहीं होगी। आम तौर पर अनुज्ञप्ति देकर राज्य किसी को कोई विशेषाधिकार या लाभ प्रदान नहीं करता है। यह केवल जनहित में किसी व्यापार, व्यवसाय या पेशे को विनियमित करता है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां एक सरकार जो किसी विशेष संपत्ति की मालिक है, किसी को उसके लाभ के लिए उस संपत्ति का दोहन करने के लिए अनुमति या अनुज्ञप्ति दे सकती है। ऐसा अधिकार विचार के लिए दिया जा सकता है। केवल उन्हीं मामलों में अनुज्ञप्ति या अनुमति को किसी लाभ या विशेषाधिकार का प्रदान माना जा सकता है, न कि सामान्य व्यापार, व्यवसाय या पेशा करने के लिए दी जाने वाली अनुज्ञप्ति के मामलों में। यदि ऐसा माना जाए, तो राज्य न्यायालयों में विधि व्यवसाय करने या चिकित्सा व्यवसाय करने अथवा अन्य अनेक व्यवसायों के अभ्यास के

अधिकार को अत्यधिक मूल्य पर बेच सकता है या यहाँ तक कि उन अधिकारों की नीलामी कर सकता है ताकि उन्हें सर्वाधिक बोली लगाने वाले को प्रदान किया जाए। ऐसा अत्यंत अनुचित परिणाम हमारे विधि तंत्र की कल्पना में नहीं हो सकता। हम यह मानने के लिए प्रवृत्त हैं कि उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने *आयुक्त, हिन्दू धार्मिक अनुदान, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीयार, श्री शिरूर मठ*⁹ के प्रकरण में उद्धृत सेलीगमैन के उक्त कथनों को गलत समझा है, जिनमें यह कहा गया था कि किसी व्यक्ति को प्राप्त विशेष लाभ ही शुल्क के भुगतान का आधार होता है।

आइए अब विचार करें कि क्या वर्तमान मामले में राज्य लगाए गए शुल्क के बदले अपीलकर्ता को कोई सेवा प्रदान कर रहा है और आगे क्या वह कोई सेवा प्रदान करता है। क्या प्रदान की गई सेवाओं और लगाए गए शुल्क के बीच उचित संबंध है। दूसरे शब्दों में, क्या लगाए गए शुल्क को प्रदान की गई सेवाओं के लिए *तत्प्रति* के रूप में माना जा सकता है।

अपने प्रति शपथ-पत्र में उत्तरदाताओं के कथन जो मामले के इस पहलू पर प्रासंगिक हैं, वे प्रति शपथ-पत्र के कंडिका 10 में पाए जाते हैं। वे पढ़ते हैं:

" स्पिरिट को विकृत करने और इसे अनुज्ञप्तिधारियों को जारी करने के लिए, उत्पाद शुल्क नियमावली खंड II के पृष्ठ 177 से 181 पर बोर्ड के नियम 63 से 68 के अनुसार उचित पर्यवेक्षण और नियंत्रण की आवश्यकता है। इस बात का पूरा खतरा है कि कोई भी व्यक्ति मानव उपभोग के लिए अस्वीकृत स्पिरिट को उपयुक्त बनाने का प्रयास कर सकता है जो उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 49 के तहत दंडनीय है।

बोर्ड के उपरोक्त नियमों के अलावा अनुज्ञप्तिधारियों को विकृतीकरण और विकृतीकृत स्पिरिट जारी करने की प्रक्रिया के लिए पूर्व पुस्तिका, खंड III (पृष्ठ 67-71) के कंडिका 187 से 196 में कुछ निर्देश जारी किए गए हैं। यह पूर्णतः संभावित है कि कोई भी व्यक्ति विकृत स्पिरिट को मानव उपभोग के योग्य बनाने का प्रयास कर सकता है, जो आबकारी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत दंडनीय है।

उपरोक्त राजस्व मंडल के नियमों के अतिरिक्त, विकृतीकरण की प्रक्रिया तथा अनुज्ञप्तिधारकों को विकृत स्पिरिट के निर्गमन के संबंध में आबकारी मार्गदर्शिका, खंड 3 (पृष्ठ 67-71) के अनुच्छेद 187 से 196 में कुछ निर्देश जारी किए गए हैं। इन पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण संबंधी दायित्वों के निर्वहन हेतु राज्य सरकार को पर्यवेक्षण कर्मचारी तथा रासायनिक परीक्षक नियुक्त करने होते हैं।

यह भी जोड़ा जा सकता है कि आबकारी विभाग केवल जनहित की दृष्टि से इन मादक द्रव्यों का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण ही नहीं करता, बल्कि याचिकाकर्ता को यह सेवा भी प्रदान करता है कि वह आसवनी में मदिरा के निर्माण हेतु शीरा और कोयला जैसे कच्चे माल को नियंत्रित एवं सस्ती दरों पर उपलब्ध कराता है। यही कारण है कि अनुज्ञप्तिधारक, जिनमें याचिकाकर्ता भी सम्मिलित है, को स्पिरिट अत्यंत कम लागत पर प्राप्त होती है। अतः आबकारी प्राधिकारियों द्वारा लगाया गया शुल्क कोई कर या उपकर नहीं है, बल्कि यह प्रदान की गई सेवाओं के प्रतिफल के रूप में तथा उस गतिविधि के समुचित पर्यवेक्षण, नियंत्रण और विनियमन के लिए लगाया गया शुल्क है, जिसे विधायिका नियंत्रित करना चाहती है।”

उच्च न्यायालय के निष्कर्ष के अनुसार, अपीलकर्ता तथा अन्य समान अनुज्ञप्तिधारकों को सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली एकमात्र सेवाएँ यह हैं कि आबकारी विभाग को एक विस्तृत कर्मचारी व्यवस्था बनाए रखनी होती है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि निर्माणकर्ता द्वारा विकृतिकरण विधिवत किया जा रहा है, तथा यह भी सुनिश्चित किया जा सके कि विकृत स्पिरिट का, चाहे वह थोक विक्रेता, खुदरा विक्रेता या किसी अन्य अनुज्ञप्ति या अनुमति धारक के पास हो, उसका दुरुपयोग कर उसे मानव उपभोग के योग्य मदिरा में परिवर्तित न किया जाए और इस प्रकार भारी शुल्क के भुगतान से बचाव न किया जा सके। जहाँ तक विनिर्माण प्रक्रिया का संबंध है, अपीलकर्ता या इसी तरह के अन्य अनुज्ञप्तिधारियों का इससे कोई लेना-देना नहीं है। वे केवल निर्मित विकृत स्पिरिट के खरीदार हैं। अतः विनिर्माण प्रक्रिया के पर्यवेक्षण की लागत या निर्माताओं को दी गई कोई सहायता अपीलकर्ता जैसे उपभोक्ताओं से वसूल नहीं की जा सकती है। बोर्ड के नियमों के नियम 9 के तहत, आबकारी विभाग द्वारा निर्माण प्रक्रिया के पर्यवेक्षण की वास्तविक लागत की आवश्यकता होती है। इस संबंध में दोहरा शुल्क नहीं लगाया जा सकता है। उच्च न्यायालय की राय में विकृत शराब के बाद के हस्तांतरण और उसे विभिन्न व्यक्तियों जैसे कि पूर्ण-बिक्री विक्रेता, खुदरा विक्रेता या अन्य निर्माताओं के हाथों में रखने के लिए भी निकट और प्रभावी पर्यवेक्षण की आवश्यकता होती है क्योंकि विकृत शराब के पीने योग्य शराब में परिवर्तित होने और इस तरह भारी शुल्क से बचने का जोखिम होता है। इस निष्कर्ष को सही मानते हुए, ऐसा करने से राज्य उपभोक्ता को कोई सेवा नहीं दे रहा है। यह केवल अपने अधिकारों की रक्षा कर रहा है। इसके अलावा इस मामले में, वह राज्य जो न्यायालय के समक्ष यह दिखाने के लिए आलेख प्रस्तुत करने की स्थिति में था कि उसके द्वारा अपीलकर्ता और अन्य

समान अनुज्ञप्तिधारियों को क्या सेवाएं प्रदान की गई थीं, लागत या किसी भी दर पर देय लागत जो उन सेवाओं को प्रदान करने के लिए खर्च की गई थी और शुल्क के रूप में वसूल की गई राशि ऐसा करने में विफल रही है। अपीलकर्ता की ओर से, यह आरोप लगाया जाता है कि राज्य शुल्क के रूप में भारी राशि एकत्र कर रहा है और वह बदले में बहुत कम या कोई सेवा नहीं दे रहा है। प्रदान की गई सेवाओं और लगाए गए शुल्क के बीच संबंध अनिवार्य रूप से तथ्य का सवाल है। **प्रथम दृष्टया**, शुल्क अत्यधिक प्रतीत होता है, भले ही राज्य को अनुज्ञप्तिधारियों को कुछ सेवा प्रदान करने वाला कहा जा सकता है। राज्य के पास वह आलेख होनी चाहिए जिससे शुल्क और प्रदान की गई सेवाओं के बीच संबंध कम से कम एक सामान्य तरीके से स्थापित किया जा सके। लेकिन राज्य ने उन आलेखों को न्यायालय के समक्ष रखने का विकल्प नहीं चुना है। इसलिए आक्षेपित नियम के तहत अधिरोपण को उचित नहीं ठहराया जा सकता है।

इस न्यायालय में राज्य के अधिवक्ता ने यह दिखाने के लिए आलेख प्रस्तुत करने के अवसर के लिए अनुरोध किया कि विचाराधीन शुल्क राज्य द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के मूल्य के अनुरूप नहीं है। अन्यथा हम इतने विलंबित स्तर पर आने वाले उस अनुरोध को स्वीकार नहीं करते, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस न्यायालय के निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा कानूनी स्थिति को स्पष्ट किया गया था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि राज्य शुल्क लगाने को उचित ठहराने के लिए न्यायालय के समक्ष आवश्यक आलेख रखने में विफल रहा है। किन्तु तथ्य यह बना रहता है कि राज्य के पक्ष का समुचित प्रतिवादन करने वालों की लापरवाही के कारण, यदि हम आक्षेपित नियम को शून्य घोषित कर दें, तो राज्य को पर्याप्त आर्थिक क्षति हो सकती है। अतः हम राज्य को अपना पक्ष सिद्ध करने का एक और अवसर देने के लिए बाध्य हैं।

फलस्वरूप, हम अपील को स्वीकार करते हैं, उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हैं तथा प्रकरण को विधि के अनुसार, इस निर्णय के आलोक में, पुनः विचार हेतु उच्च न्यायालय को प्रत्यावर्तित करते हैं। राज्य को यह अतिरिक्त अवसर दिया जाए कि वह उस न्यायालय के समक्ष यह दर्शाने हेतु आलेख प्रस्तुत करे कि राज्य द्वारा प्रदान की गई सेवाओं का मूल्य, आरोपित शुल्क के साथ युक्तिसंगत संबंध रखता है। यदि राज्य अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करता है, तो अपीलकर्ता को भी उसका खंडन करने का अवसर प्रदान किया जाए। चूँकि यह अतिरिक्त जांच राज्य की लापरवाही के कारण आवश्यक हुई है, अतः राज्य को इस न्यायालय

तथा उच्च न्यायालय दोनों में अपीलकर्ता के व्यय का वहन करना होगा तथा इस चरण तक अपने व्यय का भार स्वयं उठाना होगा।

अपील की अनुमति दी गई।

वीपीएस.

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।